

# ख

## खालसा पंथ

(Khalsa Panth)

खालसा के दो अर्थ लिए जाते हैं जो परस्परव्यापी भी हैं। पहला, यह शब्द अरबी मूल के खालिस से उपजा है यानी इसका मतलब है खालिस या शुद्ध/खरा पंथ। साथ ही यह सम्प्रभु/आजाद पंथ भी है। यह अर्थ मुगल वित्तीय तंत्र के तहत चलने वाली भूमि मालिकाने की व्यवस्था से भी जुड़ा है जिसमें 'खालिसाह' भूमि सीधे बादशाह के अधीन होती थी ज़मींदारों के नहीं। इस लिहाज़ से खालसा का सीधा संबंध ख से है और वह उसी के प्रति वफ़ादार है। इसी आधार पर खालसा की राजनीतिक अवधारणा खड़ी है, जिसमें राजसत्ता के प्रति दृष्टिकोण निहित है। इस मुद्दे पर आम लोगों और विद्वानों में काफ़ी बहस चलती रही है और आज भी जारी है। कुल मिला कर गुरु-ग्रंथ-पंथ की एकता ही सिक्ख धर्म की परिभाषा है जिसके तहत आदि ग्रंथ को गुरु, आध्यात्मिक सम्प्रभुता का जीवंत प्रतीक और उपादान माना जाता है। इसी के इहलोक में प्रवहमान होने का मूर्त रूप खालसा पंथ है जो राजनीतिक सम्प्रभुता का संधान करता है। खालसा पंथ की वैचारिकी का निर्माण विषमता को पुष्ट करने वाली सत्ता के विमर्श और सिक्ख गुरुओं द्वारा प्रतिपादित धार्मिक बराबरी और बहुलता के सिद्धांत के आपसी टकराव के आखिरी जवाब के तौर पर हुआ है। धर्म युद्ध का विचार सेवा के सिक्ख सिद्धांत का रूपांतरण है, लिहाज़ा खालसा का मतलब है परमात्मा की सेना जो राजसत्ता के दुरुपयोग के खिलाफ़ संघर्ष करती है। सत्ता के दुरुपयोग का विरोध इस लिहाज़ से खालसा की नैतिक ज़िम्मेदारी है। इस नैतिक ज़िम्मेदारी का मक़सद राजसत्ता हासिल करना न होकर जनता की तरफ़ से

राजसत्ता पर जनता के नियंत्रण को पुख्ता करने में निहित है खालसा की जायज़करारी इसी प्रक्रिया से निकलती है। इसी संदर्भ में निहाररंजन राय कहते हैं कि भारतीय चिंतन परम्परा में गुरु गोबिंद सिंह पहले दार्शनिक हैं जो जनता को अपनी हस्ती का स्रोत मानते हैं। प्रोफ़ेसर भूपिंदर सिंह खालसा के अंतिम लक्ष्य को नैतिक स्वःशासन हासिल करने के साथ जोड़ते हैं जिससे समाज और राजसत्ता का आपसी द्वंद्व न रहे।

खालसा की स्थापना का एक महत्वपूर्ण सांगठनिक पहलू भी है जो सिक्ख धर्म में महंतों की मध्यस्थता खत्म करने से जुड़ा हुआ है। तीसरे गुरु अमरदास ने सिक्ख संगत को संगठित करने के लिए बाईस मंजीओं की स्थापना की जो स्थापित संगत को गुरु-घर से जोड़ने और रसद-चढ़ावा इत्यादि का खयाल रखते थे। सत्रहवीं सदी के आरम्भिक दौर से इन मंजियों के प्रभारी महंतों में भी भ्रष्टाचार और विकृतियाँ दिखने लगीं और उनका मुकामी संगत से संबंध भी पदानुक्रमिक हो गया। संगत की आस्था को अपनी सम्पत्ति समझते हुए वे गुरु तेग बहादुर की छिपी अवहेलना भी कर गये। प्रमाण मिलते हैं कि नौवें गुरु तेग बहादुर ने गाँवों में जाकर महंतों को छोड़कर संगत से सीधे साक्षात्कार किया। इस लिहाज़ से 1699 की बैसाखी को आनंदपुर में एकत्रित संगत को 'खण्डे का पहल' दे कर खालसा नाम देना इस प्रक्रिया का भी तार्किक फलितार्थ था।

1666 में पटना में माता गुजरी की कोख से जन्मे बालक गोबिंद राय की उम्र अपने पिता गुरु तेग बहादुर की दिल्ली के चाँदनी चौक में हुई शहादत के समय नौ साल की थी। उनकी शिक्षा-सिखलाई अपने मामा कृपाल चंद की देख-रेख में हुई। उन्होंने पीर मुहम्मद से फ़ारसी, साहिब चंद से गुरुमुखी और संस्कृत और एक राजपूत से घुड़सवारी और शस्त्र-विद्या सीखी। बीस साल की उम्र तक आते-आते



पंज प्यारों को दीक्षा देते हुए गुरु गोबिंद सिंह

ब्रिटिश म्यूजियम

उन्होंने अपनी सुविख्यात *चण्डी दी वार* का सृजन किया जो कि पंजाबी साहित्य में परवर्ती वारकारों के लिए प्रतिमान बन गयी। *शाहनामा फ़िरदौसी*, *पुराण परम्परा* और *आदि ग्रंथ* इत्यादि में उनकी इस दक्षता के अनेक प्रमाण विषय-वस्तु और वैचारिक एकाग्रता के संदर्भ में दिखाई देते हैं। अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण कुछ को छोड़ कर उनकी रचनाओं के असल स्वरूप को सँभालने में दिक्कतें आयीं और इसी कारण दशम ग्रंथ के कृतित्व को लेकर आज तक विवाद बना हुआ है।

मामा कृपाल चंद की अगुआई में सिक्खों ने गुरु गोबिंद को सच्चा पादशाह कहना शुरू किया। उनके दरबार का रख-रखाव शाहाना तर्ज का रखा गया। संगत की बढ़ती संख्या, सैन्य प्रशिक्षण और शाहाना रख-रखाव नज़दीक के पहाड़ी राजाओं को खटकने लगा। कई बार सैनिक झड़पें भी हुईं। साथ ही उनकी पहली रचना *जाप साहिब* सिक्ख वैचारिक परम्परा पर उनकी पकड़ और इस की निरंतरता बनाये रखने के संकल्प को दर्शाता है। उनकी अगली रचना *अकाल उस्तत* और बृजभाषा में रचित *चण्डी चरित्र*, *कृष्णा अवतार* इत्यादि में हिंदू पुराण परम्परा के चर्चित प्रसंगों की नयी व्याख्या करके दसवें गुरु ने दुष्ट-दमन के लिए धर्म-युद्ध की अनिवार्यता को सिक्ख दर्शन के खालसाई संस्करण से जोड़ा। अट्टारहवीं सदी के पहले दशक में फ़ारसी में रचे *ज़फ़रनामा* में उन्होंने औरंगजेब को इस्लाम के विपरीत आचरण करने पर लताड़ा। गुरु गोबिंद सिंह को इस्लाम विरोधी मानने वालों के पास इस सच्चाई का कोई जवाब नहीं है कि उनकी सेना में सूफ़ी पीर बुद्धू शाह और भीखन शाह के मुरीद भी शामिल थे। खुद गुरु गोबिंद सिंह को चमकौर की कच्ची गढ़ी में से सुरक्षित निकालने वाले दो अफ़ग़ान ग़नी ख़ाँ और नबी ख़ाँ थे। खुद उन की रचना में करता-करीम

और रहीम इत्यादि संकल्प प्रचुरता में उपलब्ध हैं। यह भी एक तथ्य है कि यमुना के किनारे पाँवटा में अपने क्रयाम के दौरान उन्होंने विविध जुबानों के कवियों को एकत्र किया और भारतीय परम्परा का नया पाठ गढ़ने की कवायद शुरू की जो बाद में आनंदपुर में उनके दरबार में भी क्रायम रही। इस लिहाज़ से खालसा इन सब प्रक्रियाओं का मंचन भी है, इनका वाहक भी और सिक्ख पंथ की वैचारिकी का नये संदर्भ में सूत्रधार भी है।

खालसा सजने का प्रतीकात्मक महत्त्व सभी पुरुषों के नाम के पीछे सिंह और स्त्रियों के नाम में कौर लगाने से भी है। खालसा संत और

सिपाही के संयोग का संधान भी है जो इस के पाँच ककारों : केस, कंघा, कड़ा, कृपाण और कछहिरा में निहित है। जे.पी.एस. ओबरोय ने इन्हें धारण करने के अनुष्ठान को बाक्री सभी पंथों और सम्प्रदायों में दी जाने वाली दीक्षा प्रक्रिया का प्रतीकात्मक उत्क्रमण करार दिया है। उनके अनुसार इन पाँच ककारों को दो-दो की कोटि में डाल कर देखना चाहिए ताकि इन के अर्थ उजागर हो सकें। जैसे केस/कंघा। बालों को प्राकृतिक ढंग से रखना और न काटना कई पंथों में प्रचलित है। जोगियों और नाथपंथियों में केश जटाओं का रूप ले लेते हैं जो उनकी संन्यास साधना का परिचायक हैं। लेकिन खालसा पंथ में केस के साथ कंघा लगा हुआ है यानी केशों को कंघे से सँवार कर धारण करना है। लिहाज़ा संन्यास के किरदार को समाज के साथ सम्बद्ध रहना है। दूसरी कोटि से कड़ा/कृपाण की है। दायें हाथ की कलाई में लोहे का कड़ा कमर के बायीं ओर पहनी कृपाण को म्यान से बाहर निकालता है। यह कृपाण अन्याय के ही खिलाफ़ उठे, द्वेष के कारण नहीं— इस का ध्यान कड़ा दिलाता है जो विवेक नैतिकता और संयम का प्रतीक है। इस तरह से सिक्ख धर्म की धुरी गहन सामाजिकता है और गृहस्थ इसका प्रतीक है। राजसी सत्ता, संन्यास और धर्म-युद्ध की परिकल्पना भी इसी सामाजिकता को बढ़ावा देने के लिए की गयी है, न कि उसके स्थानापन्न के रूप में।

1699 की बैसाखी पर खण्डे की पहलु 'अमृत छक' कर पहले पाँच 'सिंह' 'पंज प्यारे' कहलाये जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आये थे। फिर खुद गोबिंद राय ने उन से पहलु ली और खुद को उन पाँच का चेला घोषित किया। अब संगत ही गुरु भी थी। वैयक्तिक गुरु से संगत में और 1708 में उनकी मृत्यु के बाद आदि ग्रंथ को गुरु का दर्जा दिया गया।



जे.एस. गरेवाल इस प्रक्रिया को उत्तर-गुरु काल में गुरु ग्रंथ और गुरु पंथ के आपसी रिश्ते से दर्शाते हैं।

एक दिलचस्प मुद्दा खालसा 'रहित' का बना हुआ है और अठ्ठारहवीं सदी से आज तक 'रहतनामा' पोथियों पर अनुसंधान जारी है। डब्ल्यू.एच. मॅकल्योड इन्हीं पोथियों को खालसा पंथ की धुरी मानते हुए इस्लाम-विरोध को खालसा से जोड़ कर देखने का मत प्रस्तुत करते हैं। साथ ही हिंदू पौराणिक हवालों को गुरु गोविंद सिंह के वैचारिक दृष्टिकोण से जोड़ कर देखने की बजाय वे उसे एक क्रिस्म का विचलन या गड्डु-मड्डु वैचारिकी का नतीजा मानते हैं। इस बहस का सफर भी सिख-स्टडीज़ के उप-अनुशासन जितना ही पुराना है।

देखें : सिक्ख धर्म और गुरु नानक।

### संदर्भ

1. एन.आर. राय (1975), *द सिक्ख गुरुज़ ऐंड द सिक्ख सोसाइटी, अ स्टडी इन सोशल ऐनालिसिस*, मुंशीराम, नयी दिल्ली.
2. जे.एस. गरेवाल और एस.एस. बल (1967), *गुरु गोविंद सिंह, ए बायोग्राफिकल स्टडी*, पंजाब युनिवर्सिटी, चंडीगढ़.
3. जे.पी.एस. ओबेरॉय (1999), *रिलीजन, सिविल सोसाइटी ऐंड द स्टेट : ए स्टडी ऑफ सिक्खिज़म*, ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
4. भूपिंदर सिंह (1999), 'राज करेगा खालसा', *अंडरस्टैंडिंग द सिक्ख थियरी ऑफ रिलीजन ऐंड पॉलिटिक्स*, प्रीतम सिंह और एस.एस. थांडी (सम्पा.), *पंजाबी आइडेंटिटी इन ग्लोबल कांटेक्ट*, ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

— सुमेल सिंह सिद्धू

## खिलाफत आंदोलन

(Movement for Khilaphat)

खिलाफत आंदोलन भारत के उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण और विवादास्पद घटनाओं में से एक है। इस आंदोलन का केंद्रीय मुद्दा सीधे-सीधे भारतीय भू-क्षेत्र से संबंधित नहीं था, लेकिन उसके साथ भारतीय मुसलमानों के धार्मिक जुड़ाव ने उन्हें असहयोग आंदोलन की ओर आकर्षित करने की भूमिका निभायी। इसे मुसलमान तुष्टीकरण की नीति के रूप में देखने और बढ़ावा देने को एक भूल क्रार देने वाले विद्वानों की भी कमी नहीं है। दूसरी तरफ यह तर्क भी पेश किया जाता है कि इसके कारण हिंदू-मुसलिम एकता को बढ़ावा मिला और राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती मिली।

खिलाफत का अर्थ है खलीफ़ा का राज्य। खलीफ़ा की हैसियत धार्मिक मुखिया की भी होती है, और राजनीतिक मुखिया की भी। इस्लामिक जगत में एक राज्य प्रणाली के रूप में खिलाफत का उदय पैगम्बर की मृत्यु के तत्काल बाद हुआ था। एक लम्बे ऐतिहासिक घटनाक्रम के बाद 1517 में तुर्की के सुल्तान खिलाफत के पर्याय बन गये। उन्हें दुनिया भर के मुसलमानों ने अपना खलीफ़ा मान लिया। खिलाफत को कुरान और पैगम्बर की परम्पराओं पर आधारित मानने वाले मुसलमान समुदायों में यह विश्वास भी गहराई से जमा हुआ था कि इस्लाम और शरीयत की रक्षा के लिए खलीफ़ा की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है।

भारतीय मुसलमानों की तुर्की के प्रति हमदर्दी का मुख्य कारण धार्मिक था, क्योंकि वे तुर्क साम्राज्य के सुल्तान को अपना धर्म गुरु या खलीफ़ा मानते थे। उल्लेखनीय है कि मुगल सम्राटों ने भारत से बाहर किसी खलीफ़ा या आध्यात्मिक नेता को मान्यता नहीं दी थी। लेकिन मुगल साम्राज्य के पतन के बाद ही उन्नीसवीं सदी में भारतीय मसजिदों में तुर्की के सुल्तान का नाम लिया जाने लगा। प्रथम विश्व-युद्ध के समय तुर्क साम्राज्य के शासक सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय मुसलमानों के खलीफ़ा थे। युद्ध में तुर्की ने अंग्रेजों के खिलाफ जा कर जर्मनी से सहयोग किया। प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान मुसलमानों का समर्थन हासिल करने के लिए अंग्रेजी सरकार ने आश्वासन दिया था कि तुर्की की अखण्डता और अरब तथा मेसोपोटामिया के पवित्र स्थानों की सुरक्षा की जाएगी। इन्हीं आश्वासनों के आधार पर भारतीय मुसलमान तुर्की की सेनाओं के खिलाफ युद्ध करने के लिए राजी हुए थे। जैसे ही युद्ध में जर्मनी-तुर्की की हार का अंदेशा पैदा हुआ, यह चर्चा होने लगी कि अंग्रेज तुर्की के सुल्तान के साथ बहुत बुरा सलूक करेंगे। खबरें आने लगीं कि तुर्की को अपमानजनक शर्तें मानने के लिए मजबूर किया जाएगा।

इसकी प्रतिक्रिया में भारतीय मुसलमानों की तरफ से यह माँग की गयी कि मेसोपोटामिया, अरब, सीरिया, फ़िलिस्तीन एवं अरब से संबंधित सभी द्वीप और सभी धार्मिक स्थान खलीफ़ा के अधिकार में ही रहें। उस समय के अधिकांश प्रमुख मुसलमान नेता इस माँग के समर्थक थे। मसलन, मौलाना अल असन, अब्दुल वारी, हक़ीम अजमल खान, डॉ. मुख्तार अहमद अंसारी, मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद तथा मुहम्मद अली और शौकत अली (इन्हें अली बंधु के नाम से भी जाना गया) ने तुर्की के शासक के अधिकारों का समर्थन किया। दरअसल, इन्हीं नेताओं के प्रयासों से भारतीय मुसलमानों में यह चिंता फैली कि अंग्रेज उनके धार्मिक स्थानों और खलीफ़ा के साथ बदसलूकी कर रहे हैं। मुसलिम लीग के तत्कालीन नेताओं ने भी यह मुद्दा



काफ़ी जोर-शोर से उठाया। इसी माहौल में सितम्बर, 1919 में अखिल भारतीय ख़िलाफ़त कमेटी का गठन हुआ जिसने ख़िलाफ़त आंदोलन को जन्म दिया।

गाँधी इसके पहले ही दमनकारी रौलट एक्ट के ख़िलाफ़ सत्याग्रह की घोषणा कर चुके थे। नवम्बर, 1919 में हुई ख़िलाफ़त कांग्रेस में उन्होंने अध्यक्षीय भाषण दिया। उन्होंने मुसलमानों की समस्याओं को हल करने के लिए असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उन्होंने जोर दे कर कहा कि यदि सरकार मुसलमानों की माँगों के हिसाब से शांति समझौता नहीं करती है, तो उन्हें सरकार को सहयोग करना बंद कर देना चाहिए। 19 जनवरी को डॉ. मुख्तार अहमद अंसारी के नेतृत्व में ख़िलाफ़त कमेटी का एक शिष्टमण्डल वायसराय से मिला। उसने माँग रखी कि तुर्की के सुल्तान और ख़लीफ़ा की सम्प्रभुता के साथ छेड़छाड़ न की जाए। इसके बाद गाँधी ने ख़िलाफ़त कमेटी की बैठक में असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव रखा। अबुल क़लाम आज़ाद की अध्यक्षता में हुई ख़िलाफ़त कमेटी की बैठक में इसे स्वीकार कर लिया गया। गाँधी ने कांग्रेस पर ख़िलाफ़त आंदोलन को स्वीकार करने के लिए दबाव डाला। उन्होंने दलील दी कि अगर समाज में रहने वाले एक-दूसरे के सुख-दुःख के भागीदार न बनें तो समाज का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम जारी रहा। 14 मई, 1920 को सेवैरेज की संधि हुई। इसमें तुर्की के प्राचीन साम्राज्य के टुकड़े कर दिये गये। ईरान, मेसोपोटामिया, स्मिर्ना, सीरिया और फ़िलिस्तीन पर सुल्तान की सत्ता समाप्त कर दी गयी। इस संधि ने मुसलमानों की भावनाओं को बहुत गहरी चोट पहुँचायी और उन्हें ब्रिटेन का विरोधी बना दिया। गाँधी ने अगस्त, 1920 से असहयोग आंदोलन शुरू कर दिया था। वे ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये सभी सम्मानों को लौटा चुके थे। कांग्रेस ने दिसम्बर, 1920 में हुए नागपुर के वार्षिक अधिवेशन में असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव स्वीकार किया। इसमें ख़िलाफ़त आंदोलन के लक्ष्य को भी आंदोलन का हिस्सा माना गया। असहयोग के साथ ख़िलाफ़त की माँगें जोड़े जाने से इस आंदोलन को बहुत बल मिला। उलेमाओं द्वारा गठित जमायत-उल-उलेमा के लगभग नौ सौ मुसलमान विद्वानों ने फ़तवा जारी करके असहयोग आंदोलन को अपना समर्थन प्रदान किया। गाँधी और अली बंधुओं ने देश भर में दौरा किया और लोगों से सम्पर्क कर उन्हें असहयोग आंदोलन में सक्रिय भागीदारी करने का आह्वान किया।

असहयोग आंदोलन ने ज़बरदस्त प्रभाव डाला। बहुत से लोगों ने सरकारी नौकरियाँ, वकालत आदि छोड़ दीं। मुसलमानों और हिंदुओं ने ख़िलाफ़त और स्वराज्य की

स्थापना के लिए मिल-जुलकर काम किया। जुलाई, 1921 में हुई ख़िलाफ़त कांग्रेस में मुसलमानों से अंग्रेज़ी सेना छोड़ने का आह्वान किया गया। इसमें यह भी कहा गया कि यदि ब्रिटिश सरकार तुर्की पर हमला करती है तो भारत के मुसलमान भारत की स्वतंत्रता की घोषणा कर देंगे। सम्मेलन के बाद इसके सभापति मौलाना मुहम्मद अली को राजद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया। उनके भाई शौकत अली भी गिरफ़्तार हो गये। अक्टूबर, 1921 में कांग्रेस ने ख़िलाफ़त कांग्रेस के प्रस्तावों का समर्थन किया और अपने कार्यकर्ताओं से असहयोग आंदोलन में तेज़ी लाने के लिए कहा। बहरहाल, 5 फ़रवरी, 1922 को चौरा-चौरा काण्ड होने के कारण गाँधी ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया।

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि 1922-23 के दौरान तुर्की में भी बहुत से क्रांतिकारी बदलावों के लिए संघर्ष चल रहे थे। इन संघर्षों को वहाँ की जनता का भी अच्छा-खासा समर्थन प्राप्त था। इसी क्रम में मुस्तफ़ा क़माल पाशा के नेतृत्व में युवा तुर्कों के आंदोलन ने सुल्तान अब्दुल हमीद को सत्ताह्युत कर दिया। मुस्तफ़ा क़माल पाशा 1923 में तुर्की के शासक बने। उन्होंने सल्तनत ख़त्म करके तुर्की में गणतंत्र की स्थापना की। क़माल पाशा ने ख़लीफ़ा के पद को नाम मात्र के लिए आध्यात्मिक पद के रूप में ही क़ायम रखा। सुल्तान अब्दुल हमीद के भतीजे अब्दुल मज़ीद एफ़ेंडी को ख़लीफ़ा बनाया गया। लेकिन क़माल पाशा को यह अहसास हो गया था कि जब तक ख़लीफ़ा का पद रहेगा तब तक तुर्की में दूसरे देशों के लोग धार्मिक मुद्दों के आधार पर हस्तक्षेप करते रहेंगे। इस कारण उन्होंने 3 मार्च, 1924 को ख़लीफ़ा का पद पूरी तरह से ख़त्म कर दिया।

बहुत से लोगों ने अलग-अलग आधारों पर ख़िलाफ़त आंदोलन का समर्थन करने और उसे बढ़ावा देने के लिए गाँधी की आलोचना की है। विनायक दामोदर सावरकर जैसे धुर-हिंदू दक्षिणपंथियों ने इसे मुसलमानों को खुश करने वाला क़दम बताया। उनके अनुसार यह भारतीय राष्ट्रवाद के लिए घातक था। आर.सी. मज़ूमदार ने ख़िलाफ़त को अखिल इस्लामी आंदोलन की संज्ञा देते हुए इसे भारतीय राष्ट्रवाद पर प्रहार की संज्ञा दी है। यह तर्क भी पेश किया गया है कि ख़िलाफ़त बचाने के लिए किया गया आंदोलन एक प्रतिगामी क़दम था। इस तर्क के अनुसार ख़िलाफ़त आंदोलन में इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि ख़ुद तुर्की में ख़लीफ़ा के सामंती शासन का विरोध चल रहा था। इस हिसाब से ख़लीफ़ा का समर्थन एक दोहरा मानदण्ड था जिसमें अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे एक समाज ने दूसरे समाज में एक स्वतंत्रता विरोधी शासक को क़ायम रखने के पक्ष में आंदोलन चलाया। ख़िलाफ़त आंदोलन के विविध फलितार्थों में एक यह भी था कि इसके कारण साम्प्रदायिकता में बढ़ोतरी



हुई। एक ओर हिंदू दक्षिणपंथियों ने इसे मुसलमानों को तुष्ट करने की रणनीति की संज्ञा दे कर अपनी गोलबंदी की, वहीं मुसलमानों की साम्प्रदायिक गोलबंदी ने भी जोर पकड़ा। जुलाई, 1921 में मोपला में हुआ हिंसक विद्रोह एक ऐसा ही एक उदाहरण है। इसमें हिंदुओं को मुसलमान बनाने की घटनाओं के साथ-साथ काफ़ी हत्याएँ भी हुईं। मोपला विद्रोह ने हिंदू सम्प्रदायवादियों की राजनीति को मज़बूत आधार प्रदान किया।

खिलाफत आंदोलन की इन आलोचनाओं को खारिज नहीं किया जा सकता है। लेकिन साथ में इस बात से इनकार भी नहीं किया जा सकता कि खिलाफत आंदोलन वह पहला मौक़ा था जब भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मुसलिमों की भावनाओं, चिंताओं और मुद्दों की स्थान देने की गम्भीर कोशिश की गयी। इससे पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जाने-अनजाने हिंदू प्रतीकों को ही ज्यादा स्थान दिया जाता था। इस लिहाज़ से गाँधी ने खिलाफत आंदोलन द्वारा मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के अलावा हिंदू-मुसलमान एकता कायम करने का लक्ष्य रखा। हालाँकि वे अपने लक्ष्य में बहुत सफल नहीं हुए, फिर भी खिलाफत आंदोलन के कारण असहयोग आंदोलन को बल मिला।

हिंदू-मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेज़ी साम्राज्य का विरोध किया। यह खिलाफत आंदोलन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है।

**देखें :** अबू अला-मौदूदी, उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन-1, 2 और 3, भारत में सशस्त्र संघर्ष-1, 2 और 3, प्रथम विश्व-युद्ध, मुहम्मद अली जिन्ना, मुहम्मद इक़बाल, मोहनदास कर्मचंद गाँधी-1 से 3 तक, उपनिवेशवाद, सविनय अवज्ञा, अबुल क़लाम आज़ाद, मुसलिम राजनीतिक विचार, विनायक दामोदर सावरकर, रमेश चंद्र मजूमदार, सैयद अहमद ख़ाँ।

### संदर्भ

1. जी. मिनाल्ट (1982), *द खिलाफत मूवमेंट : रिलीजस सिम्बॉलिज़म ऐंड पॉलिटिकल मोबिलाइज़ेशन इन इण्डिया*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
2. एम.आर.ए. बेग (1974), *मुसलिम डायलेमा इन इण्डिया*, विकास पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
3. सुमित सरकार (1983), *मॉडर्न इण्डिया, 1885-1947*, मैकमिलन, नयी दिल्ली.
4. जूडिथ एम. ब्राउन (1972), *गाँधीज राइज़ टू पावर, 1915-1922*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

— कमल नयन चौबे